रत्नाकरकी हंसकला

जी० ब्रह्मप्पा, कोल्लेगाल, मैसूर

रत्नाकर कन्नड़के अग्रणी कवि हैं। उनका भरतेश-वैभव कन्नड़ साहित्यका एक अमूल्य रत्न है। यह भारतकी कई भाषाओंमें अनूदित हो चुका है और कविका कीर्तिस्तम्भ है। रत्नाकरकी साहित्यसृष्टि जितनी अद्भुत है, उनका जीवन भी उतना ही रोमांचकारी है। बाल्यकालमें ही वे असाधारण प्रतिभाके धनी थे और वे भैरवराजके दरबारमें सम्मानित हुए। वे 'शृंगार कवि' बने और वहाँकी राजकुमारी उनके मोहमें पड़ गई। इसी समय उन्होंने अपना भरतेश-वैभव नामक अमर काव्य लिखा। रत्नाकर महान् क्रान्तिकारी कवि थे। उनके विचारोंको तत्कालीन जैन समाज सहन नहीं कर सका। फलतः वे अजैन-वीरशिव बन गये। कालान्तरमें समाजने उनके विचारोंका मूल्य समझा और उसने उन्हें अपनी समाजका पुनः अग्रणी बनाया।

रत्नाकर सोलहवीं शताब्दीके ज्ञातनाम कन्नड़ कवि हैं। वे महाकवि ही नहीं, महायोगी भी थे। भरतेश वैभवके अतिरिक्त उन्होंने रत्नाकरशतक, अपराजितेश्वरशतक, त्रिलोकशतक तथा अनेक स्फुट गीत-काव्य लिखे हैं। उनके 'भरतेश-वैभव' मे जहाँ उनकी साहित्यिक प्रतिभाके दर्शन होते हैं, वहीं उसमें उनके दार्शनिक तथ्योंको साहित्यिक रूपमें सँजोनेकी कलाकी अप्रतिभाका भान भी होता है। इस लेखमें मैं भरतेश वैभवके दार्शनिक पक्ष हंसकलाका किंचित् विवरण देनेका प्रयत्न करूँगा। उसके माध्यमसे रत्नाकर-की साहित्यिक काव्यकलाके भी रूप प्रकट होंगे।

हंसकला क्या है ?

रत्नाकरके दर्शनके लिए भेद-विज्ञान ही बुनियाद है, हंसकला ही कलश है। भरतेश-वैभवका बाहरी आवरण भोग हो, तो इसका आन्तरिक शरीर योग है। जैसे शीतल महासागरमें भी गरम पानीका झरना होना एक अनुपम प्रकृति वैचित्र्य है, वैसे ही भरतेश-वैभवके भोगकी अनेक भंगिमाओंके बीच हंसयोगका संसर्ग भी एक ध्यान देने योग्य चमत्कार है। यदि यह कहें कि रत्नाकरका श्वासनाल भेद-विज्ञान है पर इसका अन्ननाल तो हंसकला ही है, तो अत्युक्ति न होगी। साधक कवि जब उपासना करके थक जाता है, तब वह अपनी थकावट मिटानेके लिए काव्य-रचनामें हाथ लगाता है। काव्यांगनासे संलाप करता है। पर चाहे उपासना हो या काव्य हो, रत्नाकरका मूलोद्देश्य तो हंसकला ही है। रत्नाकरकी दृष्टिमें छन्द, अलंकार और अन्तमें रस—ये सब काव्यका बाह्य शरीर है। उसका आन्तरिक शरीर तो आत्मतत्त्व ही है। हंसका अर्थ आत्मस्वरूप ही है। अतः हंसकला आत्मानुसन्धानकी कला है। अपने स्वरूपका साक्षात्कार कर लेना ही हंसकला है। इसको ध्यान कहें, तपस्या कहें या योग कहें, सब समानार्थी हैं। आत्मानुसन्धानमें लगने-वाले चेतनको ध्यानी, तपस्वी और योगी कहेंगे। हंसकलोपासकको पहले चित्तवृत्तिका निरोध करना चाहिये। मन बार-बार राग-द्वेषोंके साथ विनोद करते हुए राह चलनेवाले शैतानको घरमें बुलानेकी तरह कर्मासुरको बुलाता है। मन, बचन और काय ही कर्मासुरके बार करनेके लिए खुले महाद्वार हैं। इन तीनों महाद्वारोंको हंसकलाके लिए जब सुरक्षित रखते हैं, तभी कर्मासुरको दिग्बन्ध करके रोक सकते हैं। पहलेसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही जमी हुई कर्मराशिको जपसे झाड़ सकते हैं। जब सारे कर्म चले जायेंगे, तब हमारा हंस-साम्राज्य अजेय होकर सहजानन्द बनेगा।

रत्नाकरने भरतेशकी पूरी जीवनीको हंसकलाका मुलम्मा लगाया है। इसका भरतेश बहिरात्मा नहीं है। यह अन्तरात्मा और रसानन्दमयी है। रत्नाकर एक ऐसा विश्वकवि है जो सभी कलाओंका चित्रण इस प्रकार कर सकता है जैसे सभी कलाएँ आँखोंके सामने ही नर्तन कर रही हों। गूँगेके देखे स्वप्न के समान रहनेवाली आत्मकलाका साहित्यिक वर्णन करके कविने जौहरीसाजी प्रदर्शित की है। आत्मस्वरूप को अपनी प्रतिभामयी मानस संगोत्रीके संसर्गसे कल्पना किरणोंसे सजाकर कवि हंसकलोपासनाका उत्तंस (शिरोभूषण) बना है। यह भावलिंगी है। मानसिक संस्कार ही इसकी दृष्टिमें प्रधान है। यह मननके लिए आवश्यक मानसिक परिणाम ही है। इसके बिना केवल शून्य भी नहीं, अरण्य भी नहीं है।

रत्नाकरने निराकार आत्माको ज्ञान, प्रकाश व अहंकार प्रदान करके काव्यमय रूपमें निरूपित किया है। प्रारम्भमें यह रेखाचित्र मात्र है। पर उसके आगे वर्णचित्र है। निराकार आत्मस्वरूपके लिए यह उद्गार एक सागर है। ज्ञान और ज्योति—ये दोनों आत्मविज्ञानके पिछले तथा सामनेके मुखोंके समान हैं। एकको छोड़ दूसरा नहीं रह सकेगा। रत्नाकरके समान हंसकलोपासककी विविध अवस्थाओंका चित्रण करनेवाले विरले ही हैं।

आध्यात्म अनिर्वचनीय है। मगर रत्नाकर अनुभवी है, वह साथ-साथ प्रतिभावान भी है। वह कल्पना विलासी भी है। अलौकिक तथा अनिर्वचनीय अनुभवको भी यह काव्यका कंवच पहना सकता है। उस पर विमल कलाका रंग चढ़ा सकता है। हंस कलोपासकको भी प्रारम्भमें कल्पना विलाससे ही रोमांचित होकर उत्साह पाना होता है। कल्पना घनीभूत होकर रस बनती है। यदि किसीको योगी बनना हो तो पहले उसे रसयोगी बनना पड़ता है। कल्पना पक्षको बढ़ाकर प्रतिभा नेत्रको विकसित कर लेना पड़ता है। इसीलिये भरतेश कुसुमाजीके साथ सुरतकेलि खेलनेके उपरान्त आध्यात्मिक विश्राम प्राप्त करनेके लिये कैवल्यांगना को हाथ पसार कर बुलाता है।

भरतेश अभी साधक है। वह अपने प्रतिभानेत्रसे आत्मसाक्षात्कार कर लेनेको आतुर है। वह अपने कल्पनाहस्तसे सुधारसको खींच-खींच कर अंतरात्माको ढालता है। वह रसलोकबिहारी होकर ब्रह्मलोकमें उड़नेको सन्नद्ध हो रहा है। भरतेश अपनी रमणियोंको भी हंसकलोपासनामें प्रेरित करता है।

विषयवासनाको रसानन्दसे धो लेना चाहिये। ब्रह्मानन्दको भी यदि रोचक बनना हो, तो उसे साधकके पास रसानन्दका वेष धारण करके आना चाहिये। विषय भूमिकासे साधकको रस भूमिका पर चढ़ना चाहिये। उसके बाद ब्रह्मानन्दकी माताका हृदय बनकर थोड़ा झुक कर साधकको सहारा देकर ऊपरकी ओर खींच लेना चाहिये। जब भरतेशने अपनी आत्मा ही को परमात्मा मानकर निर्भेद भक्तिसे हंसकलोपासना प्रारम्भ की, तब उसके आनन्दका पारावार ही नहीं रहा।

आत्मस्वरूप प्रकाश बनकर, सुज्ञान बन कर एवं दर्शन बनकर सुखसे टिमटिमाता है। जैसे बच्चा घुटनोंके बल चलते समय उठते-गिरते उत्साहित होता है, ऐसे ही साधक भी इस प्रक्रियामें उत्साहित होगा, विस्मित होगा। कविने हंसकलोपासनाकी इस आँखमिचौनीका भी अपने काव्यमें निरूपण किया है। यह हंसकलोपासनाकी पहली सीढ़ी है।

जब कविका साधक निर्भेद भक्तिमें स्थिर होता है, अद्वैत होकर सुशोभित होता है, तब चौंधियानेवाले ब्रह्मानन्दका इन्द्रधनुष देखते ही बनता है। रत्नाकरने ब्रह्मानन्दके अनिर्वचनीय होने पर कलारूपी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाल फैलाकर उसे बंधित किया है। रसानन्दके पारेको ब्रह्मानन्दके सीनेकी धूलि लगनी ही चाहिये न? महाकविने शून्यको रंग लगाया है। भक्तके आध्यात्मिक साहसका विवरण करते समय श्री बसवण्णाजीने भी यों कहा है :—'निराकार आत्माको पहले साकार बना लेना चाहिये। इसके लिये प्रतिभा चाहिये। कल्पना विलास चाहिये। आत्माका निकट परिचय होने तक इस कवि कर्मको निरन्तर चलना चाहिये। यह हंसकलोपासनाकी पहली मंजिल है। साधकको रसानन्दमें सराबोर होना चाहिए। खुले आम चित्रको खींचना होगा। यह बात नहीं कि शून्यको रूप देने पर सब कुछ खत्म हो गया। दिये हुए रूपको फिरसे शून्य बनाना चाहिये। इन दोनों कलाओंमें भी हंसकलोपासकको प्रवीण बनना चाहिये'।

जैसे-जैसे आत्मसाक्षात्कार होता जायेगा, वैसे-वैसे कर्मके कण झड़ते जायेंगे। अप्रत्याशित आक्रमणसे भयभीत होकर कर्मका आवरण ढीला पड़ेगा। छत्तेको धुआँ दें, तो जैसे मधुमक्खियाँ लाचार होकर तितर-बितर हो जाती हैं, ऐसे ही कर्माणु भी आश्रयहीन हो तड़पने लगेंगे।

शून्यके निर्वलय नर्तनको हंसकलोपासकके अन्तरंगमें देखिये। शून्यको आकार देना, दिये हुए आकारको दुबारा शून्य बनाना—ये दोनों हंसकलाके दो मुख हैं। कविको निर्विकल्प समाधिके अनुभवका विवरण ऐसे लोगोंको देना है जिनको सविकल्प समाधिका भी अनुभव नहीं है। बातोंके इन्द्रजालकी शैलीकी टीमटाममें रत्नाकरने हंसकलाकी कई भाव भंगिमाओंको हमारे सामने रक्खा है। जब वह निर्विकल्प समाधिकी चरम सीमा पर पहुँचते हैं, तब कैसा ब्रह्मानन्द होता है? इसे भी कविने चित्रित किया है। 'बिना सम्पत्तिके बड़ा साहूकार' कहते समय हमारा रोमांच हुए बिना नहीं रहता। अपने कल्पना विलाससे दिव्यानुभवके निरुपाधिक सुखको सहृदयियोंके हृदयंगम होनेकी तरह विश्वकविने वर्णित किया है। जो रसर्षि है, वह विषयसुखको पैरोंसे कूचता हुआ दूसरी तरफ अपना हाथ पसार कर ब्रह्मानन्दको बटोरनेका प्रयत्न करेगा। ध्यानमें निमग्न भरतेशको रत्नाकरने एड़ीसे चोटी तक चाँदनीसे अलंकृत किया है। कविने मुक्त्यंगनाके बाहुपाशमें चक्रेशको सुखी बनाकर हंसकलाको काव्यकलाकी किरणें पहनायी हैं। कविने ऐसा निरूपित किया है मानों काव्यकला ब्रह्मकलाका बरामदा ही बनी हो।

हंसकलाके विविध चरण

जब आदिदेव जिनेन्द्रावस्थाको त्याग कर सिद्ध बननेके लिए सनद्ध हुआ, तब अन्तिम तपस्या करने लगा। तीनों दोहोंको उतारकर परमात्मा बनने लगा। क्या परमं परंज्योति कोटिचन्द्रादित्य सुज्ञानप्रकाश आदिदेवकी हंसकलोपासना साधारण है? ज्योतिके योगके जलप्रपातको महाकवि यहाँ निर्माण करेगा। अपने कर्मरूपी संसारको ध्वंस करने, जड़हीन बनानेके पहले आध्यात्मिक तांडवलीलामें लगनेके अद्भुत रम्य दृश्यको चित्रित करनेके लिए कवि रत्नाकरको ही आना पड़ा। परमात्मा लम्बे कदमें व्याप्त होगा। विश्वके नीचेसे ऊपर तक फैलेगा। यह इसके कर्मसम्बन्धी तथा तेज सम्बन्धी शरीरके विश्वव्यापी होते समय दिखाई देनेवाला पहला चरण है। इसको दण्ड कहेंगे। अगला चरण ही कवाटलीला है। भगवान् खुश हुआ मानो सारे विश्वके बीचकी दीवार समाप्त की गयी है। वह (परमात्मा) फूला अंग न समाया। कार्मण-तैजस शरीरोंको धुनक-धुनक कर आड़ा-आड़ा खींचा। कवाटलीलाको खतम कर तीसरा चरण प्रतरलीलाका प्रारम्भ होता है। वायुको छोड़कर भगवान्के सारे विश्वमें व्याप्त होनेको प्रतर कहते हैं। इसके बाद चौथा चरण पूरणलीला है। समाधिस्थ आदिदेव विश्वव्यापी बनते हैं। वायुको भी मिलाकर सारे विश्वको अपनेमें विलीन कर लेते हैं। सबमें स्वयं रहकर सबको अपनेमें रखकर सुशोभित होनेवाला विश्वरूप ही समुद्घातोच्चलत्कला है। इस अवसर पर जो आध्यात्मिक रासायनिक क्रिया चलती है, उसका विश्वकविने आँखोंके सामने बीता-सा चित्रण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हंसकलोपासनाका अन्तिम लक्ष्य तो परमं परंज्योति बनना है। सुखोज्वल किरण बनना है और निरुपाधिक सुखी बनना है। दूसरोंके हाथोंमें पारिभाषिक पद पुञ्जोंको बहुत बड़ा अरण्य बनानेवाली यह हंसकला कविरत्नाकरके हाथोंमें कला बनी है। जहाँ अन्य लोग ब्रह्मकलाको पाण्डित्यके प्रदर्शनका क्षेत्र बनाते हैं, वहीं रत्नाकर ब्रह्मकलाके इस नीरस विषयको लेकर इसमें अपनी रसीली प्रतिभाका प्रभा-पुंज विकसित किया है, कल्पनाका कल्पवृक्ष संजोया है और रसका मानस सरोवर उद्घाटित किया है। उन्होंने इसमें अपनी कलाके इन्द्रधनुषी रूपको चित्रित किया है।

धर्मध्यान (निर्विकल्प समाधि) तो रत्नाकरके हाथोंमें प्रकाशकी नदी बना जिसमें काव्य रस रूपी जल प्रवाहित हुआ है। बारबार सिद्धान्तको लाने पर भी रत्नाकरने कहीं काव्यको किनारे पर नहीं हटाया। सिद्ध बननेके पहले जिनेन्द्रके विरचित दण्ड-कवाट-प्रतर-पूरण ध्यान तो रत्नाकरके हाथोंमें प्रचण्ड कला बनकर शून्यके तांडवके रूपमें सुशोभित हुआ है। यहाँ यदि धर्म ध्यानका वर्णन लास्य हो, तो समुद्रघातोच्चलत्कलामें कविने गगनचुम्बी होकर दिगंत तक हाथ फैलानेके समान बृहत् दृश्योंको निर्मित कर ब्रह्मलीलाके अद्भुत व्यापारको चित्रित किया है।

रत्नाकर कवि चिदम्बरके रहस्यको आत्मसात् किये हुए हैं। वे काव्यके नन्दनवनमें सिद्धान्तके स्थानको निर्दिष्ट रूपसे निर्देशित करनेवाले निरंजन कवि हैं। वह योगीकी समाधि स्थितिको साक्षात्-सा चित्रित करनेवाला एक मात्र कवि है। रसिकता ही रत्नाकरका जीवन है। यदि उसके भरतेशवैभवका भोग राग रसिकता हो, तो यहाँका योग तो वीतराग रसिकता है। रत्नाकर महाकवियोंमें महायोगी है। उसने योगी बनकर हंसकलाका अनुभव किया है। अपने इस अनुभवको ही इसने कवि बनकर रसीले काव्यके रूपमें चित्रित किया है।

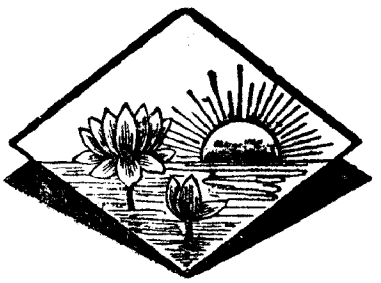

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org